विश्वस्तरीय संस्थानों की मृग मरीचिका

पी. बालाराम

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) कई मायनों में भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली के ध्वजवाहक हैं। पिछले 50 सालों से या कहना चाहिए, अपनी स्थापना से ही अपने विद्यार्थियों की गुणवत्ता के मामले में उनकी विश्वख्याति रही है। ये संस्थान मुख्यतः इंजीनियरिंग की स्नातक शिक्षा के उच्च मानदंडों पर केंद्रित रहे हैं, लेकिन विज्ञान एवं इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर पढ़ाई और शोध कार्यों ने इनकी छवि को निखारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आईआईटी में चूंकि सीटें सीमित संख्या में होती हैं और प्रवेश के लिए अभिलाषी उम्मीदवार बहुत अधिक, इस वजह से संयुक्त प्रवेश परीक्षा (जेईई) की शुरुआत हुई। यह परीक्षा ही छात्रों के चयन का मानदंड बन गई।

हाल के वर्षों में 'कोंचिंग' के फायदे का धंधा बनने के साथ ही जेईई की चमक फीकी पड़ती गई है। आईआईटी की प्रवेश परीक्षा में बहुत से सफल और उच्च रैंक प्राप्त विद्यार्थी भी पाठ्यक्रम की पढ़ाई के दौरान बहुत ही सामान्य-सा प्रदर्शन करते हैं। इन संस्थानों के परिसरों में भी उन छात्रों के मुंह से ऐसी शिकायतें अक्सर सुनी जा सकती है जिन्होंने सालों इसकी तैयारी की है।

पिछले कुछ दशकों के दौरान आईआईटी की छवि मुख्यतः उससे पढ़कर निकले छात्रों के बलबूते बनी है। इनमें से कई दुनिया भर में अलग-अलग क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा चुके हैं। 1960 और उसके बाद के दशकों के दौरान इन संस्थानों में पढ़े अनेक छात्र बड़े ही गर्व से अपने आईआईटी के दिनों को याद करते हैं। वे बड़ी ही कृतज्ञता के साथ उन शिक्षकों का भी स्मरण करते हैं जो हमेशा उन्हें प्रेरित करते थे। हाल के वर्षों में आईआईटी की संख्या में इज़ाफा होने के साथ ही उसकी 'ब्रांड इक्विटी' पर खतरा भी मंडराने लगा है। अपने इन संस्थानों के लिए 'ब्रांड इक्विटी' आईआईटी के कई सफल विद्यार्थियों का लोकप्रिय जुम्ला रहा है। इन संस्थानों की संख्या में बढ़ोतरी के बावजूद अब भी अनेक विद्यार्थियों की प्राथमिकता पुराने आईआईटी ही रहती है।

आईआईटी का ही छात्र होने और भारतीय अकादमिक परिदृश्य पर लंबे समय से नज़र रखने के कारण केंद्रीय मंत्री जयराम रमेश के बयान पर मुझे बड़ा अचरज हुआ। एक कार्यक्रम में उन्होंने समुद्री जैव विविधता पर अनुसंधान केंद्र की स्थापना में देश के सबसे बड़े औद्योगिक घराने रिलायंस के साथ साझेदारी करने की सरकार की इच्छा जताई। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद जयराम रमेश ने आईआईटी पर अपना फैसला सुना दिया। उन्होंने अनुसंधान के मामले में आईआईटी की फैकल्टी को बहुत ही औसत करार देते हुए कहा कि इन संस्थानों की प्रतिष्ठा केवल उनके छात्रों के कारण टिकी हुई है। उन्होंने छात्रों को 'विश्वस्तरीय' बताया। सरकारी संस्थानों में हुए सभी अनुसंधानों को अप्रभावी और अप्रासंगिक बताकर उन्हें खारिज

करने का एक मकसद शोध के क्षेत्र में सार्वजनिक-निजी भागीदारी के प्रति सरकार के नए रुझान को उचित ठहराना भी हो सकता है। मंत्री द्वारा आईआईटी फैकल्टी की सार्वजनिक निंदा के बाद मीडिया में जो हंगामा मचा, उसमें इस बात की ओर ध्यान नहीं गया। किसी ने भी इस बात का आकलन नहीं किया कि निजी क्षेत्र ने अनुसंधान के जो वादे किए थे, वे एक दशक बाद भी पूरे क्यों नहीं हो पाए जबकि इस दौरान उसने सरकारी रियायतों से खूब फायदा कमाया। जिस समय मंत्री का यह बयान आया, उस समय मैं आईआईटी कानपुर के वार्षिक दीक्षांत समारोह में भाग लेने की तैयारी कर रहा था। आईआईटी कानपुर का पूर्व छात्र होने के नाते मैं इस बात को लेकर गौरवान्वित था कि मुझे चार दशक के बाद पुरानी यादों में लौटने का मौका मिलेगा। मैंने जब आईआईटी में प्रवेश लिया था, उस समय कैरियर को लेकर मैं बहुत ज़्यादा केंद्रित नहीं था। मैं पत्रकारिता या सिविल सेवा में कैरियर बनाने पर विचार कर रहा था, लेकिन योजना कोई बहुत सुस्पष्ट नहीं थी। दो साल बाद मैंने आईआईटी छोड़ दिया। तब तक मैं पूरी तरह से विज्ञान का हो चुका था।

अकादमिक संस्थानों में विद्यार्थियों के कायाकल्प और उनके परिपक्व होने में किन चीज़ों की प्रमुख भूमिका होती है? निश्चित रूप से वे अपने सहपाठियों और शिक्षकों से सबसे ज़्यादा प्रभावित होते हैं। कहते हैं, इतने सालों में काफी कुछ बदल चुका है। क्या वाकई?

क्या आज के शिक्षक उन शिक्षकों की अपेक्षा कम विद्वान, कम प्रतिबद्ध और कम समर्थ हैं, जिन्होंने आईआईटी की शुरुआत में अपनी सेवाएं दी थीं? या फिर माहौल ही बदल गया है, इतने सालों में विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों की महत्वाकांक्षाएं बदल गई हैं और बाहरी दुनिया की अपेक्षाएं नाटकीय ढंग से बढ़ गई हैं? ये वे सवाल हैं जिन्होंने मुझे कानपुर तक की लंबी यात्रा के दौरान परेशान किया। लेकिन अभी तो और भी बहुत कुछ बाकी था।

इसके कुछ दिन बाद ही बैंगलौर में आयोजित एक कार्यक्रम के दौरान बेहद योग्य वैज्ञानिक और आईआईटी के भूतपूर्व अध्यापक सी.एन.आर. राव ने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों और भारतीय विज्ञान संस्थान (आईआईएससी) को औसत दर्जे के संस्थान करार दिया। एक राजनीतिज्ञ और एक वैज्ञानिक, दोनों के द्वारा इस तरह की राय ज़ाहिर करने से गंभीर सवाल उठ खड़े होते हैं।

क्या विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के क्षेत्र में हमारे अग्रणी अनुसंधान एवं शिक्षा संस्थान उतने ही कमज़ोर हैं, जितने कि जयराम रमेश और राव ने बताया है? क्या 'विश्वस्तरीय' के पैमाने को हमारे राजनीतिज्ञ, नीति निर्धारक और कई बार वैज्ञानिक खुद भी अच्छी तरह से समझते हैं? क्या हमारे सर्वश्रेष्ठ संस्थान अपने स्तर से और भी नीचे गिर गए हैं? क्या संसाधनों में बढ़ोतरी और 'प्रशासन' में सुधार करके हम अपने संस्थानों को 'विश्वस्तरीय' संस्थानों में बदल सकते हैं?

यह संयोग ही था कि एक तरफ हमारे संस्थानों के स्तर को लेकर बहस चल रही थी, वहीं काकोड़कर समिति की रिपोर्ट जारी हो गई। इस समिति का गठन केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने आईआईटी के स्तर को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाने के सम्बंध में सिफारिशें देने के लिए किया था। रिपोर्ट 'आईआईटी को सर्वश्रेष्ठ और अधिक प्रासंगिक बनाने के प्रयास' शीर्षक से आई है और करीब 250 पन्नों की है। इस रिपोर्ट के पांचवें अध्याय की शुरुआत इन पंक्तियों से होती हैं : 'विश्वस्तरीय संस्थानों के लिए विश्वस्तरीय फैकल्टी की ज़रूरत होती है।' साफ है कि अगर संस्थानों, जिनका कि मूल मकसद इंजीनियरिंग की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है, को 'शोध विश्वविद्यालयों' में बदलना है तो इस बात पर ज़ोर देना होगा कि शोध को लेकर फैकल्टी की तरफ से क्या नतीजे आ रहे हैं। हमारे सर्वश्रेष्ठ संस्थानों में अनुसंधान की गुणवत्ता व मात्रा को लेकर बहस की शुरुआत हाल के वर्षों में विश्वविद्यालयों को विश्व रैंकिंग देने की परंपरा से हुई है। इस रैंकिंग में भारतीय संस्थान 100 शीर्ष संस्थानों की सूची में भी नहीं हैं। केवल कुछ संस्थान ही शीर्ष 500 की सूची में स्थान बना पाते हैं। ऐसे में इस सूची में आगे बढ़ने की अभिलाषा लगातार बनी रही है। कई टिप्पणीकार 'विश्वस्तरीय' को संख्यात्मक रूप में परिभाषित नहीं कर सके हैं, लेकिन

लगता है कि उनके दिमाग में शीर्ष 100 की जादुई संख्या ही रही होगी।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय 'विश्वस्तरीय' शब्द को बड़े ही ढीले-ढाले रूप में इस्तेमाल करता है। संभवतः कई रिपोर्टों और दस्तावेज़ों में प्रस्तुत 'भविष्य का विज़न' से उसने इसे उधार लिया होगा। दर्ज़नों 'विश्वस्तरीय' विश्वविद्यालयों की स्थापना के मकसद का इज़हार मंत्रालय कई बार कर चुका है। एक और शब्द है जिसका बहुत ज़्यादा दुरुपयोग हुआ है और वह उसका बेहद पसंदीदा भी है। यह शब्द है 'नवाचार'। हम राष्ट्रीय 'नवाचार विश्वविद्यालय' स्थापित करने की दिशा में बढ़ रहे हैं और हमारे मौजूदा संस्थान राजनेताओं व नीति निर्धारकों की आलोचनाओं के भार तले शिथिल पड़ते जा रहे हैं। दुर्भाग्य से हमारे संस्थानों को 'विश्वस्तरीय' बनाने की समस्या को लेकर चल रही चर्चाएं इस बात को समझे बगैर होती है कि आखिर विश्व रैंकिंग घोषित करने की प्रक्रिया क्या है।

आईआईटी को और भी बेहतर और प्रासंगिक बनाने के लिए क्या किया जाना चाहिए, इसका एक कार्यक्रम बनाने की कोशिश के तहत काकोड़कर समिति ने चीन का एक संक्षिप्त दौरा किया। समिति ने वहां जो देखा, उसके कुछ हिस्सों को यहां फिर से प्रस्तुत किया जा सकता है : "विश्वविद्यालयों को केंद्र सरकार के मार्गदर्शन में संस्थागत स्वायत्तता हासिल रहती है। वहां शिक्षकों के कामकाज के समग्र आकलन की एक प्रणाली है। यह आकलन हर साल किया जाता है। शिक्षकों का मानदेय अलग-अलग हो सकता है और उनके प्रदर्शन पर निर्भर करता है। शिक्षकों का प्रदर्शन अध्यापन, अनुसंधान के नतीजों, उनके द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली प्रौद्योगिकी, संसाधनों का सदुपयोग, उद्योगों/स्थानीय सरकारों के साथ उनके संपर्कों इत्यादि पर निर्भर करता है।"

इसे पढ़ने के बाद मेरे लिए यह सोचकर निराश होने के अलावा और कोई चारा नहीं था कि हमारे बहुत अच्छे प्रयास भी चीनी सिंड्रोम से ग्रस्त होकर पटरी से उतर सकते हैं। काकोड़कर और उनके सहयोगी भारत और चीन के शासन तंत्र के बीच के अंतर के बारे में निश्चित रूप से जानते होंगे। साथ ही इस तथ्य से भी अवगत होंगे कि दोनों देशों में 'स्वायत्तता' और 'मार्गदर्शन' के अर्थ कितने अलग-अलग हो सकते हैं। 'तथ्य-अन्वेषण मिशन' पर समितियों को विदेश भेजने की प्रवृत्ति मुझे रास नहीं आती है (हालांकि मैं स्वीकार करता हूं कि मेरे विचार पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो सकते हैं)। आईआईटी की ताज़ा समीक्षा वर्ष 2004 की रामा राव रिपोर्ट में शायद ही कुछ नया जोड़ती है। इसमें विस्तार को लेकर जो कहा गया है, उसका आईआईटी (या किसी भी संस्थान) को विश्वस्तरीय बनाने के कार्य से कोई नाता नहीं है।

आईआईटी के पूर्व निदेशक पी. वी. इंद्रसेन हाल ही में अपने ताज़ा स्तंभ में जयराम रमेश के विचारों से एक हद तक सहमत नज़र आते हैं,'आईआईटी विश्वस्तरीय अनुसंधान संस्थान नहीं हैं। हालांकि रमेश का यह आकलन सही नहीं है कि विद्यार्थी विश्वस्तरीय हैं। जेईई अब इस तरह की परीक्षा बन गई है कि उसमें प्रतिभाशाली की बजाय साधारण विद्यार्थी ही अधिक सफल होते हैं।' इंद्रसेन कहते हैं कि मंत्री का बयान केवल 'आधा सच' है। वे महात्मा गांधी को उद्धरित करते हुए कहते हैं, 'आधा सच झूठ से भी बदतर है। इसलिए मैं इसे डेढ़ झूठ कहता हूं।' जयराम रमेश, सी.एन.आर. राव और पी.वी. इंद्रसेन, तीनों बेहद अलग-अलग किस्म के टिप्पणीकार हैं, लेकिन ये एक ही कटु सच्चाई को व्यक्त करते हैं। अनुसंधान के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनने के लिए हमारे सर्वश्रेष्ठ संस्थानों को अपने अकादमिक प्रदर्शन में चमत्कारिक सुधार करना होगा। हमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि हमारे संस्थान जिस तरह के परिवेश में स्थित हैं कि उससे सुधार की कोई भी प्रक्रिया सीमित हो सकती है। किसी भी सार्थक बहस में संस्थानों के इतिहास की जानकारी और उनके विकास की प्रक्रिया की समझ मददगार होती है। यह मानना कोरी मूर्खता होगी कि इरादे ज़ाहिर करने भर से हमारे संस्थान 800 साल पुराने कैम्ब्रिज और 375 साल के अनुभवी हार्वर्ड से टक्कर लेने लगेंगे। व्यापक सुधार प्रक्रिया की चर्चाओं में ऐतिहासिक विरासत और बाध्यताओं को भी ज़रूर ध्यान में रखा जाना चाहिए।

संस्थानों को भी आत्म-विश्लेषण व अंदरूनी समीक्षाएं करते रहना चाहिए, साथ ही उन्हें तात्कालिक व मध्यकालीन लक्ष्यों को परिभाषित भी करना चाहिए। बेहतर होगा कि दूरगामी भविष्य का विज़न तैयार करने का काम सरकार द्वारा नियुक्त समितियों पर छोड़ दिया जाए। दूसरों से भी सीखा जाना चाहिए और यह कार्य पढ़कर या उनके कार्यों की झलक देखकर किया जा सकता है। 'नए मित्र' के बारे में लिखते हुए ब्रूस अल्बर्ट अपने हालिया संपादकीय में कहते हैं, "दूसरे देशों द्वारा की गई गलतियों से भी सीखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, बहुत साल पहले जब मैंने भारत के एक बड़े वैज्ञानिक से पूछा कि उनके विशाल अनुसंधान संस्थान की सबसे बड़ी समस्या क्या है, तो उनका जवाब चौंकाने वाला था। उन्होंने मुझसे कहा कि लोगों से काम करवाना ही सबसे बड़ी समस्या है। मैंने जब इसकी पड़ताल की तो पता चला कि भारत के शासकीय संस्थानों में लोगों को केवल एक साल के काम के बाद स्थाई कर दिया जाता है।"

'जवाबदेही' बहुत ही लोकप्रिय शब्द है, लेकिन अकादमिक संदर्भों में इसका इस्तेमाल शायद ही कभी होता हो। संस्थागत सुधार सबसे पहले संस्थानों के भीतर ही शुरू होने चाहिए। अकादमिक प्रदर्शन में लगातार सुधार को सुनिश्चित करना होगा। अन्यथा 'विश्वस्तरीय' संस्थान का जुम्ला केवल मृग मरीचिका ही बनकर रह जाएगा और हम हमेशा उसके पीछे ही भागते रहेंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***